रामायण और रामचरितमानस में वर्णित नारी–धर्म

*डॉ. शैलजा भट्ट

'वाल्मीकि रामायण' और 'रामचरित मानस' में अनसूया–सीता प्रसंग में नारी–धर्म की विस्तार से चर्चा है। वाल्मीकि रामायण में तपोवृद्ध एवं वयोवद्ध अनसूया के दर्शन होते हैं। वे एक महान तपस्विनी हैं। स्वयं अत्रि मुनि भी उनकी तपस्या से अभिभूत हैं। उनके तपोबल के समक्ष बड़े से बड़े ऋषि–मुनियों की तपस्या भी अत्यल्प प्रतीत होती है। उग्र तपस्या के प्रभाव स्वरूप अनेक सिद्धियाँ उनके करतल गत है। बड़े से बड़े विघ्न दूर करने की उन्हें सामर्थ्य प्राप्त है। अत्रि मुनि राम के समक्ष उनका परिचय एक अति असामान्य विलक्षण नारी के रूप में देते हैं, जो अपने संकल्प मात्र से बुभुक्षित व्यक्तियों के लिए जल व फूल–मूल उत्पन्न कर सकती हैं, अनावृष्टि से संतप्त एवं पिपासित जनता जनार्दन के लिए मंदाकिनी की धारा उस स्थल पर बह सकती है। यह असाधारण कार्य उनकी तपस्या व त्याग के कारण ही निष्पादित हो सका है। इसीलिए पति अत्रि के हृदय में उनके लिए असीमित श्रद्धा व गर्व की भावना है। राम को परिचय देते हुए उनके प्रशंसासूचक उद्‌गार इस प्रकार पस्रवित होते है–

'रामाय चाचचक्षे तां तापसीं धर्मचारिणीम्।
दश वर्षाण्यनावृष्टया दग्धेलोके निरन्तरम।
यया मूलफले सृष्टे जाह्नवी च प्रवर्तिता।
उग्रेण तपा युक्ता नियमैश्चाप्यलंकृता।
दश वर्ष सहस्राणि यया तप्तं महत् तपः
अनसूया व्रतैस्तात प्रत्यूडाश्च निबर्हिताः।।[1]

सहस्र वर्षों से तपस्यारत् अनसूया ही वाल्मीकि रामायण में नारी–धर्म की उपदेशिका के रूप में सामने आयी हैं। वाल्मीकि रामायण में उनकी उपस्थिति सर्वप्रथम अयोध्या काण्ड के 117 सर्ग में होती है जहाँ वे एक अत्यंत वृद्धा के रूप में आयी हैं–

शिथिलां वलितां वृद्धां जरा पाण्डुरभूर्धजाम्।
सततं वेपमानांगी प्रवाते कदलीमिव।[2]

(अर्थात् अनसूया का सारा शरीर झुर्रियों से भरा हुआ, बाल सफेद व अंग प्रत्यंग वार्द्धक्य के कारण शिथिल और प्रंकपित हैं।)

अनसूया सीता को पति–व्रत का पाठ पढ़ाती हैं। उनकी दृष्टि में सीता द्वारा समस्त पद–प्रतिष्ठा का परित्याग कर राम का वन में अनुसरण करना एक अत्यंत उत्कृष्ट आचरण है। अनसूया की सोच त्याग और सहनशीलता के उदात्त भावना से प्रेरित है। स्त्री का यह रूप एक स्वस्थ परिवार की आधर शिला बन सकता है। यहाँ स्त्री एक अत्यंत समर्थ और सक्षम रूप में सामने आयी है जो अपने संकल्प और कर्त्तव्य से अपने जीवन साथी के सोच को भी बदल सकती है। यद्यपि अनसूया के वचन आज के समाज में बहुत सी स्त्रियों को स्वीकार्य न होंगे और वे इसे स्त्री की पराधीन सोच का परिणाम बतायेंगी,

लेकिन यह सोच अपने संकीर्ण सुख के इर्द–गिर्द ही नहीं घूमता प्रत्युत् एक परिवार को बिखराव से बचाता है। अनसूया की सोच कुछ इस रूप में वाल्मीकि रामायण में सामने आती है–

नगरस्थो वनस्थो वा शुभा वा यदि वाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः।।
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः।
नातो विशिष्ट पश्यामि बान्धवं विमृशन्त्यहम्।
सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपः कृतमिवाव्ययम्।।
न त्वेवमनुगच्छन्ति गुणदोषमसत्स्त्रियः।
कामवक्तव्यहृदया भर्तृनाथश्चरन्ति याः।।
प्राप्नुन्त्ययशश्चैव धर्मभ्रंशं च मैथिलि।
अकार्यवशमापन्नाः स्त्रियो याः खलु तद्विधाः।।
त्वद्विधास्तु गुणैर्युक्ता दृष्टलोकपरावराः।
स्त्रियः स्वर्गे चरिष्यन्ति यथा पुण्यकृतस्तथा।।[3]

(अर्थात् अपने स्वामी नगर में रहें या वन में, भले हों या बुरे, जिन स्त्रियों को वे प्रिय होते हैं उन्हें महान अभ्युदयशाली लोकों की प्राप्ति होती है। पति बुरे स्वभाव का, मनमाना बर्ताव करने वाला अथवा धनहीन क्यों न हो, वह उत्तर स्वभाव वाली स्त्रियों के लिए श्रेष्ठ देवता के समान है। मैं बहुत विचार करने पर भी पति से बढ़कर हितकारी बंधु नहीं देखती, लोक में और परलोक में सर्वत्र सुख पहुँचाने में समर्थ होता है। जो अपने पति पर शासन करती हैं, वे काम के अधीन चित्त वाली असाध्वी स्त्रियाँ इस प्रकार पति का अनुसरण नहीं करतीं। उन्हें गुण दोष का ज्ञान नहीं होता, अतः वे इच्छानुसार इधर–उधर विचरती रहती हैं। ऐसी नारियाँ अवश्य ही अनुचित कर्म में फँसकर धर्म से भ्रष्ट हो जाती हैं और संसार में उन्हें अपयश की प्राप्ति होती है। किन्तु जो तुम्हारे समान लोक–परलोक को जानने वाली स्त्रियाँ है वे उत्तम गुणों से युक्त होकर पुण्य कर्मों में संलग्न रहती हैं, अतः वे दूसरी पुण्य–आत्माओं की भांति स्वर्गलोक में विचरण करेंगी।)

सती अनसूया का समग्र चिंतन एक स्वस्थ पारिवारिक व्यवस्था को बनाये रखने में है। पति–पत्नी का पारस्परिक सहभाव, सुख–दुःख में साँझी भागीदारी परिवार को बिखराव से बचाती हैं वैचारिक वैभिन्य और गार्हस्थ्य जीवन में केवल और केवल सुशोपभोग की आशा–अभिलाषा सद्गृहस्थी के लक्षण नहीं हैं। विवाह एक समझौता नहीं है, एक पवित्र गठबंध है, जहाँ स्वसुखोपभोग के संकुचित चिंतन क्षेत्र से निकलकर जीवन–साथी को मनसा–वाचा–कर्मणा मानसिक संबल देने का पुनीत प्रयत्न भी सम्मिलित है। यद्यपि यह सोच एक तरफा न होकर पुरुष वर्ग से भी अपेक्षित है लेकिन उद्गार अनसूया के मुख से निःसृत हैं, जहाँ उनकी सोच अधिकारों पर केन्द्रित न होकर कर्त्तव्य पर अधिक टिकी है। वैसे भी प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्त्तव्य करने के लिए स्वतंत्र और सक्षम है। दूसरे से केवल वह अपेक्षा रख सकता है। यह अपेक्षा कभी वंचना का भी शिकार बन सकती है, जिसमें केवल और केवल दुःख ही मिलता है। आज के प्रसंग में भी स्त्रियाँ केवल अपने अधिकारों के लिए सोचती हैं और केवल अपना सुख चाहती हैं। ऐसी सोच भी एकांगी ही है। सुख की तलाश में वे पग–पग पर धोखे का शिकार होती हैं और कभी–कभी विवेकशून्य अमर्यादित जीवन उन्हें अपयश और अवसाद के अन्धकूप में ही धकेलता है। 'अकार्यवशमापननः स्यिो याः खलु तद्विधाः'[4] कहकर अनसूया ऐसी ही स्त्रियों की ओर संकेत कर रही हैं। जबकि ऐसे भी अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं जहाँ थोड़े से धैर्य, थोड़े से विवेक और त्यागमय जीवन ने

अपने जीवनसाथी के चरित्र को आमूलचूल परिवर्तित कर सुख्मय जीवन की आधारशिला रखी गयी है। निश्चित रूप से यह गुण उन्हें पुरुषें से विशिष्ट सिद्ध करता है। इसीलिए सती अनसूया सीता को उपदेशित करती है–

तदेवमंतं त्वमनुव्रता सती पतिप्रधाना समयानुवर्तिनी।

भव स्वभर्तुः सहधर्मचारिणी यशश्च धर्म च ततः समाप्स्यसि।।[5]

(अर्थात तुम अपने पति को प्रधान देवता मानती हुई, सती धर्म का पालन करते हुए उनकी अनुवर्ती बनी हुई सहधर्मिणी बनो। इससे तुम्हें सुयश और धन दोनों को प्राप्ति होती।)

सीता और अनसूया दोनों ही विचारवान और विवेकी नारियाँ हैं। उन्हें सद्–असद् के सूक्ष्म विवेक का ज्ञान है। पति के सुख–दुःख में सहभागिता और पारस्परिक अगाध विश्वास उनके प्रेम का मेरुदण्ड बना है। वे सच्चे प्रेम और वासना जन्य भोग की सूक्ष्म विभाजक रेखा को भली भाँति जानती है। इसका यह मतलब कदापित नहीं कि वे परम्परावादी दासता की बेड़ियों में जकड़ी हैं। वे तो परस्पर प्रेम, श्रद्धा और विश्वास की डोर को थामकर एक आदर्श व्यवस्था को जन्म देना चाहती हैं। उन्हें तो अपने उस अगाध क्षमता और सामर्थ्य का भी ज्ञान है जिसके बल पर वे दूषित चरित्र वाले जीवन साथी के जीवन को भी सही दिशा में मोड़ सकती है।

सीता का मानस भी अनसूया के ही धरातल पर खड़ा है। वह उन्मुक्त कण्ड से स्वीकारती हैं–

'पतिशुश्रूषणान्नर्यास्तपो नान्यद् विधीयते।[6]

(अर्थात् स्त्री के लिए पति सेवा के अतिरिक्त किसी दूसरे का विधान नहीं है।)

आत्मविश्वासी सीता निःशक होकर कहती है–

यद्यप्येष भवेद् भर्ता अनार्यो वृत्तिवर्जितः।

अद्वैधमत्र वर्तव्यं यथाप्येष मया भवेत्।।[7]

वास्तव में निर्धन और चरित्रहीन व्यक्ति को सुधारने का सत्साहस सीता के पास हैं। तभी तो वह उपर्युक्त कथन कहने का साहस रखती हैं। उसके समक्ष सावित्री, अनसया, रोहिणी, के प्रत्यक्ष उदाहरण भी है। सीता भारतीय संस्कृति की संरक्षिका है। उसे अपनी माता व सास से भी यही शिक्षा मिली है।[8]

तुलसी ने भी 'रामचरितमानस' में वाल्मीकि के समान ही नारी–धर्म की विवेचना की है। पति–पत्नी का गठबंधन गुरुतर उत्तरदायित्व वहन की माँग करता है। तुलसी अपनी युग की माँग–स्वरूप नैतिकता पर अधिक बल देते हैं। उनके अनुसार–

जग पतिव्रता चारि विध अहहीं। वेद पुरान संत सब कहहीं।।

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।।

बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।

पतिवंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुःख न समुझ तेह सम को खोटी।[9]

संयम और स्वानुशासन के माध्यम से ही स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाया जा सकता है। उत्तम, मध्यम, निम्न, निकृष्ट स्त्रियों की कोटि निर्धारण करते समय भी तुलसी की यही भावना काम कर रही है। इसका यह कदापि अर्थ नहीं है कि ऐसा संयम व स्वानुशासन का पाठ केवल स्त्रियों को ही पढ़ाया जा रहा है। राम जैसे चरितनायक की सृष्टि कर उन्होंने पुरुष वर्ग के कर्त्तव्यों का भी स्पष्ट खाका खींचा है। अंतिम पंक्तियों में यौन स्वेच्छाचारिता को उन्होंने सिरे से खारिज कर

दिया है। एक विकृति–मुक्त स्वस्थ परिवार और समाज की कल्पना इसके बिना संभव ही नहीं हो सकती समाज की अनुशासित करने के उद्देश्य से तुलसी ने अनसूया के माध्यम से स्वेच्छाचारिता के दुष्परिणाम का भय भी दिखाया है–

पति प्रति कूल जनम जहँ जाई। विधवा होई पाइ तरुनाई।।[9]

वाल्मीकि के समान ही तुलसी भी जीवन साथी के प्रति मन, वचन, कर्म से किये समर्पण को प्रेम का मूल आधार मानते हैं–

एकई धर्म एक व्रत नेमा। कायँ वचन मन पति पद प्रेमा।।[10]

पश्चिम में पारिवारिक बिखराव का कारण क्या है? वहाँ ऐसे समर्पण की सर्वाधिक न्यूनता दिखाई पड़ती है और परिणामद्य स्वाधीनता और आनुनिकताजन्य प्रबोध के नाम पर अनेक दम्पति तलाक और पुनर्निवाह के बाद भी असंतोष और अवसाद के दलदल में छटपटाते रह जाते हैं। तुलसी मानते हैं–

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखअहिं चारी।।[11]

धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री की विपत्ति में ही परीक्षा होती है। विपत्ति में ही स्त्री–पुरुष का परस्पर मानसिक सम्बल प्रदान करने की अधिक आवश्यकता होती है। यही वह निष्कर्ष है जहाँ निष्कपट सच्चे प्रेम को परखा जा सकता है। वाल्मीकि के समान ही तुलसी भी माता–पिता, भाई–बहन सबसे पति का स्थान स्त्री के लिए सर्वोपरि मानते हैं।[12]

तुलसी का यह भी मानना है कि–

वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।

एसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुःख नाना।[13]

निर्धनता और रोग कभी भी व्यक्ति को घेर सकते हैं। तो क्या ऐसे में उसका परित्याग उपयुक्त है? कालक्रम से बुढ़ापा भी प्रत्येक को आ दबोचता है। प्रश्न उठता है कि ऐसे संकट ग्रस्त क्षणों में क्या पत्नी द्वारा पति को छोड़ देना चाहिए? तुलसी मानवता के पुजारी थे। अंधे, बहरे, क्रोधी व अति दीन–हीन व्यक्ति को न त्यागने के पीछे भी उनकी यही भावना काम कर रही है। प्रसंगानुकूल यहाँ केवल स्त्री धर्म की चर्चा हुई है, अन्यथा एक आदर्श व्यवस्था के तहत आचार्य तुलसी पुरुष वर्ग से भी ऐसे ही व्यवहार की माँग करते हैं। वाल्मीकि हो या तुलसी–दोनों ही आदर्श भारतीय संस्कृति के संतोषक हैं। अनसूया–सीता–मिलन–प्रसंग में उपदेशित नारी–धर्म आज भी सुधी वर्ग द्वारा पुनर्मूल्यांकन की अपेक्षा रखता है।

***व्याख्याता**

एस.एस. जैन सुबोध पी.जी (स्वायत्तशासी) महाविद्यालय,

रामबाग सर्किल, जयपुर

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:–

1. वाल्मीकि रामायण / अयोध्या काण्ड / सर्ग 117, श्लोक 9–11
2. वा.रा. / अयो.का. / सर्ग 117, श्लोक 18
3. वा.रा. / अयो.का. / सर्ग 117, श्लोक 23–28
4. वा.रा. / अयो.का. / सर्ग 117, श्लोक 27
5. वा.रा. / अयो.का. / सर्ग 117, श्लोक 29

6. वा.रा. / अयो.का. / सर्ग 118, श्लोक 3
7. वा.रा. / अयो.का. / सर्ग 118, श्लोक 10, 11, 12

क. पाणिप्रदान काले च यत् पुरा त्वग्निसंनिधौ।
अनुशिष्टं जनन्या में वाक्यं तदपित में धृतम्।। वा.रा. / अयो.का. / सर्ग 118, श्लोक 8

ख. आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम्।
समाहितं हि में श्रवश्वा हृदये यत् स्थिरं मन। वा.रा. / अयो.का. / सर्ग 118, श्लोक 7

8. रामचरितमानस, तुलसी / अरण्य काण्ड / दोहा सं. 4 / 11–17
9. रामचरितमानस, तुलसी / अरण्य काण्ड / दोहा सं. 4 / 19
10. रामचरितमानस, तुलसी / अरण्य काण्ड / दोहा सं. 4 / 10
11. रामचरितमानस, तुलसी / अरण्य काण्ड / दोहा सं. 4 / 7
12. मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुने राजकुमारी।।
अमित दान भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।। रामचरितमानस, तुलसी / अरण्य काण्ड / दोहा सं. 4 / 5–6
13. रामचरितमानस, तुलसी / अरण्य काण्ड / दोहा सं. 4 / 4, 9